द्वितीय अध्याय

1- वेद में प्राण शब्द का प्रयोग
2- अथर्ववेद प्राण-सूक्त ऋग्वेद में प्राण
3- प्राणशक्ति और शरीर
4- प्राण शक्ति और ब्रह्माण्ड

द्वितीय अध्याय

वेद में प्राण शब्द का प्रयोग

प्राण का ऋग्वेदरूप में वर्णन-

एष उ एव बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या ।
एष पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः ।।[1]

इस प्रकार ऋग्वेद में प्राण को "बृहस्पति" और "बृहती" कहते हैं अर्थात प्राण वाणी का प्रतिपालक होने से बृहस्पति कहलाता है ।

प्राण का यजुर्वेदरूप में वर्णन-

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग्वै ब्रह्म तस्या ।
एष पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पति ।।[2]

यजुर्वेद में इसी प्राण को "बृहस्पति" भी कहते हैं, क्योंकि यजुर्वेद रूप वाणी "ब्रह्म" है, उसका यह पति होने के कारण इसको ब्रह्मणस्पति कहा गया है ।

1- बृहदारण्यकोपनिषद्, प्रथम अध्याय.
2- तैत्तरीय ब्राह्मण.

यजुर्वेद में प्राण शब्द का प्रयोग-

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिवेभ्य:
पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा ।
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो
देवां शो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिपुता
भंगे न हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ।।[1]

अर्थ- हे उपांशुग्रह, तुम सब इन्द्रियों से सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से स्वयं उत्पन्न हुए हो । मनरूप प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरित करें । तुम्हारा आविर्भाव प्रकाशित है । मैं तुम्हें सूर्य की प्राप्ति के लिए यह आहुति देता हूँ, इसे भली प्रकार स्वीकार करो । हे लेप के पात्र, मरीचिपालक को सन्तुष्ट करने के लिए मैं तुम्हें मंजित करता हूँ । हे अंशुदेव । तुम तेजस्वी हो, मैं अपने शत्रु के निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हूँ, वह अमुकनाम वाला शत्रु शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो । हे उपांशुग्रह । प्राण देवता की उपासना के लिए मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । उपांशु सवन, व्यान देवता की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हे यहाँ स्थापित करता हूँ ।

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिवेभ्य:
पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा ।
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वाय मरीचिपेभ्यो
उदानाय त्वा ।।[2]

अर्थ- हे प्राणरूप उपांशुग्रह सब इन्द्रियों से, सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से तुम स्वयं आविर्भाव को प्राप्त हुए हो । मन रूप प्रजापति तुम्हें मेरी ओर

1-यजुर्वेद-अध्याय 7, मंत्र 3

2-वही, मंत्र 6

प्रेरित करें । हे लेप मात्र में तुम्हें मरीचि पालक देवताओं की तृप्ति के लिए मेर्जित करता हूँ । हे अन्तर्यामि ग्रह तुम्हें उदान देवता के प्रीत्यर्थ यहाँ स्थापित करता हूँ।

आ वायोभूष शुचिया उप नः सहस्त्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मदयमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवेत्वा।।[1]

अर्थ- हे अग्ने पवित्र पान करने वाले वायो तुम हमारे पास आओ, तुम सर्व व्याप्त हो । तुम्हारे हजार-हजार वाहन हैं । तुम उन वाहनों के साथ हमारे पास आओ । हर्ष प्रदायक सोमरूप अन्न तुम्हारी सेवा में समर्पित करता हूँ । हे देव, तुमने जिस सोमन का पूर्वपान धारण किया है उसी सोम को हम तुम्हारे समक्ष लाते हैं । हे तृतीय ग्रह सोमरस, मैं तुम्हे वायु की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ -

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसेपवस्व, व्यानाय मे वर्चोदा
वर्चस पवस्वो दानाय मे वर्चोदा, वर्चस पवस्व,
वाचे मे वर्चोदा वर्चस पवस्व, क्र तूदक्षाभ्यां मे
वर्चोदा वर्च से पवस्व श्रोत्राय मे
वर्चोदा वर्चस पवस्व चक्षुभ्यां मे वर्चोदिसौ वर्च से पवेथाम् ।।[2]

अर्थ- हे उपांशुग्रह जिस प्रकार तुम तेज प्रदान करने वाले हो, इसी प्रकार मेरे हृदयस्थ प्राणवायु में तुज बृद्धि करने वाले होओ । हे उपांशु सवन । तुम्हारा स्वभाव ही तेज प्रदान करने वाला है, मेरे व्यान वायु को बृद्धि के लिए यत्नशील होओ ।

हे अन्तर्यामि ग्रह जिस प्रकार तुम अपने स्वभाव से तेज प्रदान करने वाले होओ, वैसी ही मेरी तेज बृद्धि की कामना करो । हे इन्द्र वायव ग्रह तुम

1-यजुर्वेद- 7 अध्याय, मंत्र 7
2- वही, मंत्र 27

स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी वाणी संबंधी क्रान्ति को तीक्ष्ण करो । हे मैत्रावरुण ग्रह । तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी वाणी संबंधी क्रान्ति को तीक्ष्ण करो । हे मैत्रावरुण ग्रह तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी कार्य-कुशलता और अभीष्ट संबंधी क्रान्ति को बढाओ । हे अश्विनग्रह । तुम तेजदाता स्वभाव वाले हो, मेरी श्रोत्रेन्द्रिय को तेजस्विनी करो । हे शुक्र और मन्थिग्रह तुम तेज देने वाले स्वभाव के हो, मेरी नेत्र ज्योति को बढाओ-

प्राण मे पाह्यपानं मे पाहि, व्यानं मे पाहि
चक्षुर्म. उर्व्या विभाहि, श्रोत्र मे श्लोकय
अप: पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि,
दिवो वृष्टिमेरय ।।[1]

अर्थ- हे इष्टके तुम मेरे प्राण की रक्षा करो, मेरे अपान की रक्षा करो । हे इष्टके । तुम मेरे व्यान की रक्षा करो । हे इष्टके तुम मेरे चक्षुओं की, मेरे कानों की रक्षा करो । हे इष्टके तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त होकर यह पृथ्वी वृष्टि जल द्वारा सिंचित हो । हे इष्टके तुम औषधियों को पुष्ट करो । हे इष्टके चतुष्पाद ।पशुओं। की रक्षा करो । हे इष्टके स्वर्ग से जल वृष्टि को प्रेरित करो-

प्राण मे पाहि अपानं मे पाहि, व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि
श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनोमें जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योति
मे यच्छ ।।[2]

अर्थ- हे इष्टके । मेरे प्राण की रक्षा करो । हे इष्टके । मेरे अपान की रक्षा करो, मेरे व्यान की रक्षा करो । हे इष्टके मेरे चक्षुओं की रक्षा करो, मेरे श्रोत्रों की रक्षा करो । हे इष्टके मेरे वाणी को परिपूर्ण करो । हे इष्टके मेरे मन को पुष्ट करो । हे इष्टके मेरी आत्मा की रक्षा करो । हे इष्टके मेरे तेज की रक्षा

1-यजुर्वेद, अध्याय 14, मंत्र 8

2- वही.

करो ।

प्राणदा अपानदा व्यानदा क्षौदावरिवोदा: ।
अन्यास्ते अस्मत्पन्तु हेतय: पावको अस्मभ्यं शिवो भव ।।[1]

अर्थ- हे अग्ने । तुम प्राण, अपान, व्यान के देने वाले बल देने वाले, धन देने वाले और शुद्ध करने वाले, कल्याणकारी हो । तुम्हारी ज्वाला रूप आयुध हमसे भिन्न व्यक्तियों को सन्तप्त करे ।

प्राणया मे अपानपाश्चक्षुषा: श्रोत्रपाश्च मे ।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायक: ।।[2]

अर्थ- हे ग्रह तुम मेरे प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र, और इन्द्रिय की रक्षा करने वाले हो । मेरी वागेन्द्रिय सब औषधियों और मन के विषय से निवृत्ति पाकर आत्मा मे स्थापित हो ।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं
च मऽधीतं चमे वाक् चमे मनश्च मे चक्षुश्च मे ।
श्रोत्रं च मे दक्षश्च मेबलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।[3]

अर्थ- मुझे इस यज्ञ के फल से प्राण, अपान, व्यान, मानस, संकल्प, बाह्य ज्ञान, सामर्थ्य मन, चक्षु श्रोत्र, ज्ञानेन्द्रिय और बल की प्राप्ति हो ।

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा
चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ।
वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ।।[4]

अर्थ- प्राणो के निर्मित स्वाहुत हो । अपान के निर्मित स्वाहुत हो । व्यान के निर्मित स्वाहुत हो । चक्षुओ के निर्मित स्वाहुत हो । श्रोत्रों के निर्मित स्वाहुत हो । वाणी के लिए स्वाहुत हो ।मन के निर्मित स्वाहुत हो ।

1-यजुर्वेद, अध्याय 17, मंत्र 15
2-वही अध्याय 20, मंत्र 34
3-वही अध्याय 18, मंत्र 2
4-वही अध्याय 22, मंत्र 23

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा
अम्बे अम्बिके अम्बालिके नमानयति कश्चन
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ।।[1]

अर्थ- प्राणों की तुष्टि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। अपान की तुष्टि के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । व्यान की तृप्ति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । हे अम्बे । हे अम्बिके । हे अम्बालिके । यह अश्व कम्पिला में निवास करने वाली सुखकारिणी के साथ सोता है । मुझे कोई भी नहीं पाता, मैं स्वयं उसके निकट जाती हूँ ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः स सुगोपातमोजनः।।[2]

अर्थ- जिस गृहस्थ के घर में पूज्य महान् धी के पाथ हैं, वह इन्द्रिय, वाणी, शक्ति आदि के पालन करने वालों में श्रेष्ठ जन हैं । गृहस्थ की आधारभूमि विशुद्ध रूप से पार्थिव है । व्यावहारिकता, सांसारिकता, लौकिकता की ही यहाँ बहुलता रहती है । आधुनिक पारिभाषिक शब्दो में इसे घोर यथार्थवाद या प्रत्यक्षवाद भी कहा जा सकता है । अर्थ और काम दो ही इसमें प्रधान है । अधिकांश गृहस्थ इसी में फंसे रहते हैं और अर्थ और काम से संबद्ध समस्याओं को सुलझाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य रहता है । ऐसे गृहस्थ को अलौकिक, आदर्शवादी, दो तत्व की ओर प्रेरित करना बिरले व्यक्तियों का ही कार्य है । ऐसे व्यक्तियो को जो गृहस्थ को दैवी पंथों का निर्माण करते हैं वे उन्हें "सुगोपातम" कहता है । "गोपा" का अर्थ है इन्द्रियों का पालन करने वाला । सुन्दर गोपा वह है, जिसमें सुचारु रूप से अपनी इन्द्रियों की रक्षा की है, जो धातु का रक्षण करता है, क्योंकि इसी से इन्द्रियाँ अपनी शक्ति ग्रहण करती हैं "सुगोपातम" शब्द का अर्थ सबमें शक्ति का रक्षक है । इन्द्रियों की रक्षा करने

1-यजु० अध्याय 23, मंत्र 18

2-वही अध्याय 8.

वालों में जो सर्वोत्तम है, वही गोपातम् है ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम
उपयामगृहीतोऽसि इन्द्राय त्वा मरुत्वते
उपयामगृहीतोऽसि मन्तां त्वोजसे ।।[1]

अर्थ- मरुद्गण से युक्त, वृष्टिकारक: धान्यादि की वृद्धि करने वाले, प्रमाद-रहित, बलदाता, यजमान, की रक्षा के लिए बज्र वाले उन इन्द्र की रक्षा के लिए बुलाते हैं । हे द्वितीय ग्रह । तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो । मरुत्वान् इन्द्र की प्रीति के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ । ये तृतीय ग्रह । इस ऋतु में तुम्हें मरुद्गण के बल सम्पादन के लिए ग्रहण करता हूँ-

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोम मनुष्वध मदाय
आ सिन्वस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रतिपत्सुतानाम्
उपयाम ग्रही तोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वते एष ते
योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।।[2]

अर्थ- हे मरुत्वान् इन्द्र । तुम जल-वृष्टि करने वाले हो । तुम धान्यमन्य दुग्धदधि रूप सोम रस को हर्ष के निमित पान करो और शत्रुओं से संग्राम करो । इस मधुर रस की तरंगों को जल से सींचों । तुम प्रतिपदा आदि तिथियों में निष्पन्न हुए सोम के राजा हो । हे ग्रह तुम उपयाम पात्र में संग्रह किये हुए हो । मरुत्वान् इन्द्र के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।

1-यजु० अध्याय 7, 36

2- वही, मंत्र 38

प्राण का सामवेद रूप से वर्णन

एष उ एव साम वाग्वै सामैष सा चामश्चेति तत्साम्नः
सामत्वम् यद्वै समः प्लुषिणा समो मशकेन समो नागेन
सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोऽनेन सर्वेण तस्माद्वा एवं सामस्नुते
साम्नः सायुज्यं सलोकतां य एवमेतत्साम वेद ।।[1]

अर्थ- यह प्राण ही साम है, क्योंकि वाणी " सा" तथा "अम" प्राण है और यह दोनों मिलकर "साम" बनता है । यही साम का सामपन है अर्थात प्राण के अधीन होने से मुख्य सामत्व प्राण में और वाणी में गौण है अथवा जिस कारण यह प्राण सूत्रात्मा लिंग शरीर तथा मच्छर औरहस्ति इन तीनों लोकों के समान तथा इस सम्पूर्ण विराट् शरीर के तुल्य है इस कारण भी यह प्राण साम कहा गया है । जो उक्त प्रकार से प्राण के सामभाव को जानता है वह प्राण के सायुज्य और सालोक्य को भोगता है अर्थात् प्राण के समान उसकी महिमा होती है ।

इस श्लोक का भाव यह है कि प्राण और जीवन का अव्यभिचारी संबंध है अर्थात जहाँ प्राण है, वहीं जीवन और जहाँ जीवन है वहीं प्राण है, इसलिए कहा गया है कि वह छोटे से छोटे, बड़े से बड़े प्राणधारी के समान है । परमात्मा की सृष्टि में जो यह सम्पूर्ण प्रजा बस रही है । वह सारी प्राणाश्रित होने से प्राण के समान है, जो प्राणों के इस भाव को जानता है वह प्राण के समान भाव वाला तथा उसके समान प्रकाश वाला होता है ।

अथर्ववेद में "प्राण" शब्द का प्रयोग-

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ।।[2]

1- उपनिषदार्य भाष्य-द्वितीय भाग, बृहदारण्यकोपनिषद, प्र0अध्याय, तृतीय ब्राह्मण, पृ0 21-22

2-अथर्ववेद, आ0 श्रीराम शर्मा, मंत्र 10

अर्थ- प्राणही प्रजा के अन्दर बसता है जैसा पिता पुत्र के अन्दर बसता है। प्राण ही सबका ईश्वर है जो गतिशील, जो गतिशील नहीं है। इस मंत्र में कहा गया है कि जिस प्रकार पुत्र का संरक्षण करने की इच्छा पिता करता है उसी प्रकार प्राण सबका रक्षण करना चाहता है। सब प्रजाओं के शरीर में नस-नाड़ियों में जाकर, वहाँ रहकर सब प्रजा का संरक्षण यह प्राण करता है। न केवल प्राण धारण करने वाले प्राणियों का, बल्कि जो प्राण धारण नहीं करते हैं ऐसे स्थावर पदार्थों का भी रक्षण प्राण ही करता है। अर्थात कोई यह न समझे कि श्वासोच्छ्वास करने वाले प्राणियों में ही प्राण है, परन्तु वृक्ष, वनस्पति, पत्थर आदि पदार्थों में भी प्राण है और इन सब पदार्थों में रह कर प्राण सबका संरक्षण करता है।

अतः प्राण को पिता के समान पूज्य तथा सभी पदार्थों में व्याप्त समझना चाहिए।

अथर्ववेदीयप्राण मंत्र-

यच्च प्राणाति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।।[1]

अर्थ- प्राण व्यापार वाले जीव, नेत्रेन्द्रिय से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग में स्थित देवता, पृथ्वी के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए ।

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।।[2]

अर्थ- प्राण अपान, चक्षु, कान, अक्षय और दिव्य लोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ।

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।।[3]

अर्थ- देवता प्राण आकाश पृथ्वी को तृप्त करता है और अपान से समुद्र के पेट को पालता है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्राह्मणों को हे रोहितदेव । कम्पायन करो और क्षीण करते हुए बंधन में बाँध लो ।

प्राणमन्नादं कृत्वा
प्राणेनान्नादिनान्नमत्ति य एवं वेद ।।[4]

1- अथर्ववेद- 11, 7, 25
2- वही 11.25
3- वही 11.3.4
4- वही 15, 14, 22

अर्थ- जब वह प्रजा की ओर चला तब प्राण को अन्नाद बनाकर प्रजापति रूप चला, इस प्रकार जानने वाला अन्नादि प्राण से अन्न भोजन करता है ।

प्राणापानो चक्षुः श्रोत्रक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ।।[1]

अर्थ- प्राण, अपान, नामक कृतियाँ, चक्षु, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन, आकृति- ये सभी कामनाओं को अभिमुख कराते हुए उन्हें पूर्ण कराते हैं ।

प्राणोपानो चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च या
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ।।[2]

अर्थ- प्राण, अपान, नेत्र, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, मन, उदान, वाणी, ये सभी पुरुष देह में प्रविष्ट होते हैं और अपने अपने कर्मों में लगते हैं ।

प्राणापानो मा मा हासिष्टं मा जने प्रमेषि ।
अर्थ- प्राण अपान, मुझे न छोड़ो, मैं प्रकट रहूँ ।

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय
अपरिपरेण पथा यमराजः पितृन् गच्छ ।।[3]

अर्थ- प्राण, अपान, व्यान, आयु, चक्षु सब आदित्य का दर्शन करने वाले हों हे पुरुष तू भी यमराज के प्रत्यक्ष मार्ग द्वारा पितरों को प्राप्त हो ।

1-अथर्ववेद 11.7.25
2- वही 16.25
3-वही 18.2.46

प्राणं प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षु दिवस्पयः ।।[1]

अर्थ- हे प्राण तुम मेरे प्रत्येक प्राण की रक्षा करो । हे प्राण! प्राण को सुखी करो हे प्राण देवता । दुर्गति के पाशों से हमें छुड़ाओ । हे प्राण तु सिन्धु का गर्भ और बिजलियों का फूल है । वायु तेरा प्राण है, तू सूर्य रूप में नेत्रेन्द्रिय है और द्यु लोक पौष्टिक रस है ।

प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यासि
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ।।[2]

अर्थ- हे प्राण तुम मुझसे अलग मत होओ, मुझसे अन्यत्र न होओ, मेरे पास रहो, मैं जीवन के निमित्त तुम्हें अपने शरीर में रोकता हूँ । जैसे जल में प्राण, है, वैसे ही मैं तुमको अपने जीवन के लिए बांधता हूँ -

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा सं बलेन
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ।।[3]

अर्थ- हे अग्ने । प्राण के द्वारा, चक्षु के द्वारा मैं युक्त हो जाऊँ तुम मुझे अपने शरीर और बल से प्रेरित करो । हे प्राण! तुम अमृत के बारे में जानते हो, तुमको मुझसे मत अलग होओ, तुम भूमि के न हो जाओ ।

1-अथर्ववेद 19.44.4
2-वही 11.26.13
3-वही 5,30.14

अथर्ववेदीय प्राण-सूक्त-

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे,
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्तसर्वं प्रतिष्ठितं ।।

अर्थ- जिसके अधीन यह सब जगत् है, उस प्राण के लिए मेरा नमस्कार है, वह सबका प्राण है और उसमें सब जगत् प्रतिष्ठित है । रथ के चक्र की नाभि में जैसे अरे जुड़े रहते हैं, वैसे ही प्राण में सब प्रतिष्ठित हैं ।

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्तेस्तनयित्ने,
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ।।

अर्थ- हे प्राण गर्जना करने वाले तुमको नमस्कार है, मेघों में नाद करने वाले (प्राण) तुमको नमस्कार है, हे प्राण चमकने वाले तुमको नमस्कार है और हे प्राण ।. वृष्टि करने वाले तुमको नमस्कार है ।

यत्प्राण स्तनयिश्नुना भि क्रन्दत्योषधी
प्रवीयन्तेगर्भान् दधतेअथो वद्धी जायन्ते ।।

अर्थ- हे प्राण जब तू मेघों के द्वारा औषधियों के सन्मुख बड़ी गर्जना करता है, तब औषधियाँ तेजस्वी होती है, गर्भाधारण करती हैं और बहुत प्रकार से विस्तार को प्राप्त होती हैं ।

यत्प्राण ऋतावागतेअभिक्रन्दत्योषधीः
सर्वं तदा प्रमोदते यात्विदंक व भूम्यामधि ।।[1]

अर्थ- हे प्राण वर्षा ऋतु आते ही जब तुम औषधियों के समक्ष गर्जन करने लगते हो, तब सब जगत् आनन्दित होता है, जो कुछ वस्तु इस पृथ्वी पर हैं, सब प्रसन्न होती हैं ।

1- अथर्ववेद-सूक्त-4, खण्ड 11, पृ0256

पृथिवीं
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण महीम् ।
पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वेनो भविष्यति ।।

अर्थ- जब प्राण वृष्टि द्वारा इस भूमि पर वर्षा करता है, तब पशु हर्षित होते हैं और समझते हैं कि निश्चय ही हम सबकी वृद्धि होगी । हमारे लिए बहुत अन्न पैदा होगा ।

अभिवृष्टा औषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ।।

अर्थ- औषधियों पर वृष्टि होने के पश्चात् औषधियाँ प्राण के साथ भाषण करती हैं कि हे प्राण । तुमने हमारी आयु बढ़ा दी है और हम सबको सुगन्धि युक्त किया है-

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ।।

अर्थ- हे प्राण तुम आते हो, तुम जाते हो, तुम्हें नमस्कार है ।हे प्राण तुम ठहरते हो, तुम बैठते हो, तुम्हें नमस्कार है ।

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
सर्वस्मेत इदं नमः ।।

अर्थ- हेप्राण ।. जीवन का कार्य करने वाले तुम्हें नमस्कार है, अपान का कार्य करने वाले तेरे लिए नमस्कार है । आगे बढ़ने वाले और पीछे हटने वाले प्राण के लिए नमस्कार है । सब कार्य करने वाले तेरे लिये मेरा यह नमस्कार है ।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ।।

अर्थ-

हे प्राण । जो मेरा प्रिय शरीर है, और जो तेरे प्रिय भाग हैं और जो तेरा औषध है, वह दीर्घ जीवन के लिए हमको दे ।

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राण ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ।।

अर्थ- जिस प्रकार प्रिय पुत्र के साथ पिता रहता है, उसी प्रकार सब प्रजाओं के साथ प्राण रहता है । जो प्राण धारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सबका प्राण ही ईश्वर है ।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राण देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत् ।।

अर्थ- प्राण ही मृत्यु है और प्राण ही जीवन की शक्ति है इसलिए सब देव प्राण की उपासना करते हैं, क्योंकि सत्यवादियों को प्राण ही उत्तम लोक में पहुँचाता है ।

प्राणो विराट प्राणो देष्ट्री प्राण सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ।।

अर्थ- प्राण विशेष तेजस्वी है और प्राण ही सबका प्रेरक है इसलिए प्राण की ही सब उपासना करते हैं । सूर्य ,चन्द्रमा और प्रजापति भी प्राण ही है । मैं

प्राणापानौ ब्राहियवावनवड्‌वान्प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोअपानो ब्राहिरूच्यते ।।

अर्थ- प्राण और अपान ही चावल और जौ है, प्राण को बैल कहते हैं । जौ में प्राण है और चावल अपान को कहते हैं ।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्व प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ।।

अर्थ- जीव गर्भ के अन्दर प्राण और अपान के व्यापार (क्रिया) करता है। हे प्राण तुम प्रेरणा करते हो, तब वह जीव पुनः उत्पन्न होता है।

प्राणाया हुर्मातरिश्वाभं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।

अर्थ- प्राण को मातरिश्वा कहते हैं और वायु ही प्राण है। भूत, भविष्य और वर्तमान काल में सब कुछ जो है, वह सब प्राण में ही रहता है।

आर्थर्वणीराङ्गिरसी दैवीमनुष्यजा उत
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ।।

अर्थ- हे प्राण। जब तक तू प्रेरणा करता है, तब तक ही आथर्वणी, आंगिरसी देवी और मनुष्यकृत औषधियां फल देती हैं।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीदं वर्षेण पृथिवी महीम् ।
ओषधयः प्रजायन्ते अथो याः काञ्च वीरुधः ।।

अर्थ- जब प्राण इस महान् पृथ्वी पर वर्षा करता है, तब सब औषधियां और वनस्पतियां बढ़ जाती हैं।

यस्ते प्राणेदं वेद यास्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे ।।

अर्थ- हे प्राण। जो मनुष्य तेरी इस शक्ति को जानता है और जिस मनुष्य में तू प्रतिष्ठित है। उस मनुष्य के लिए उस उत्तम लोक में सब ही सत्कार का समर्पण करते हैं।

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्य सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वाशृणावत्सुश्रवः ।।

अर्थ- हे प्राण । जिस प्रकार ये सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं, जो उत्तम यशस्वी हैं और तेरा सामर्थ्य सुनता है, उसके लिए भी बलि देते हैं ।

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत्पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः ।।

अर्थ- इन्द्रियादिकों में तो व्यापक प्राण है, वह भी गर्भ के अन्दर चलता है । जो पहले (भूत) हुआ था, वह ही फिर उत्पन्न होता है । जो पहले हुआ था, वह ही अब होता है और आगे भी होगा । पिता अपनी सब शक्तियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट होता है ।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद् हंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदन्नेवाद्य न श्वः स्यान्नरात्री
नाहः स्यान्न व्युच्छेद् कदा च न ।।

अर्थ- जल से हंस ऊपर उठता हुआ एक पाव को उठाता नहीं । हे प्रिय यदि वह उस पाँव को उठायेगा तो आज, कल, रात्रि दिन, प्रकाश और अंधेरा कुछ भी नहीं होगा ।

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्त्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ।।

अर्थ- आठ चक्रों से युक्त और सहस्त्राक्षरों से व्यक्त जिसका एकनेमि है, ऐसा यह प्राण चक्र आगे और पीछे चलता है । आधे भाग से सब भुवनों को उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है, वह किसका चिह्न है ।

यो अस्य विश्वजनमन् ईश विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राणं नमोऽस्तुते ॥

अर्थ- हे प्राण सब को जन्म देने वाले, और इस सारे हलचल करने वाले जगत् का जो ईश है, सब अन्यों में शीघ्र गतिवाले तेरे लिए नमन हैं ।

यो अस्य सर्वजन्मन ईशी सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीर प्राणो मा नु प्रतिष्ठतु ॥

अर्थ- जन्म धारण करने वाले और हलचल करने वाले सबका जो स्वामी है । वह धैर्यमय प्राण आलस्य रहित होकर आत्मशक्ति से युक्त होता हुआ प्राण मेरे पास सदा रहे ।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननुतिर्यङ् निपद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेश्वनु शुश्राव कश्चन ॥

अर्थ- सबके सो जाने पर भी यह प्राण खड़ा रह कर जागता है, कभी तिरछा गिरता नहीं, सबके सो जाने पर इसका सोना किसी ने भी सुना नहीं है ।

प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ॥
अपां गर्भमिव जीव से प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥[1]

अर्थ- हे प्राण, मेरे से पृथक् न होओ, मेरे से दूर न हो । पानी के गर्भ के समान हे प्राण, जीवन के लिए अपने अन्दर तुझको बांधता है । प्राण की जो विद्या है, उसको प्राणविद्या कहते हैं । मनुष्यों के लिए अन्य विद्याओं की अपेक्षा प्राण विद्या की अत्यन्त आवश्यकता है । मनुष्य के शरीर में भौतिक और अभौतिक अनेक शक्तियां हैं, उन सब शक्तियों में प्राण शक्ति का महत्त्व सर्वोपरि है । सब अन्य शक्तियों

1-अथर्ववेद-सूक्त-4, काण्ड, 11

के अस्त होने पर भी इस शरीर में प्राण शक्ति कार्य करती है, परन्तु प्राण के अस्त होने पर कोई अन्य शक्ति कार्य करने के लिए रह नहीं सकती है । इससे प्राण का महत्व स्पष्ट होता है ।

इस सूक्त के प्रथम मंत्र में "प्राण" शब्द से परमेश्वर की विश्व व्यापक जीवन शक्ति कही गई है । इस परमात्मा की जीवन शक्ति के अधीन यह सब संसार है । इसी के आधार से यह सब संसार विद्यमान है और इसी से संसार का नियमन भी हो रहा है । समष्टि दृष्टि से सर्वत्र प्राण का राज्य है । व्यष्टि दृष्टि से प्रत्येक शरीर में भी प्राण का ही आधिपत्य है । प्राणी मात्र के प्रत्येक शरीर में जो इन्द्रियादिक शक्तियां हैं, तथा विभिन्न अवयव और इन्द्रिय हैं, सब ही प्राण के वश में हैं । प्राण के अधीन ही सब शरीर है । शरीर में प्राण ही सब इन्द्रियों और अवयवों का ईश्वर है । क्योंकि उसी के आधार पर सब शरीर प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं । प्राण के बिना इस शरीर की स्थिति ही नहीं हो सकती है ।अर्थात् प्राण के वश में होने से सब शरीर सुदृढ़ और नीरोग हो सकते हैं और प्राण के निर्बल होने से सब शरीर निर्बल हो सकते हैं । इसलिए प्राण को स्वाधीन करने की आवश्यकता है । शरीर में श्वास, उच्छवास रूप प्राण चल रहा है और जन्म से मरण पर्यन्त यह कार्य करता है , इसलिए प्राण ही मुख्य है और सबका आधार है ।अपने प्राण को केवल साधारण श्वास रूप ही नहीं समझना चाहिए अपितु उसको श्रेष्ठ दिव्य शक्ति का अंश समझना उचित है । मन की इच्छा शक्ति से प्रेरित प्राण सब ही शरीर का आरोग्य सम्पादन करने में समर्थ होता है, इस दृष्टि से प्राण का महत्व सब शरीर में अधिक है ।

यह प्राण जैसा शरीर में है, वैसा बाहर भी है, इस विषय में द्वितीय मंत्र देखने योग्य है । इस द्वितीय मन्त्र में केवल गरजने वाले मेघों का नाम "क्रन्द" है, बड़ी गर्जना और विद्युत्पात जिनसे होता है, उन मेघों का नाम "स्तनयित्नु" है, जिनसे बिजली बहुत चमकती है, उनको विद्युत कहते हैं

और बृष्टि करने वाले मेघों का नाम है "वर्षत" । ये सब मेघ अन्तरिक्ष में प्राण-वायु को धारण करते हैं और बृष्टि द्वारा वह प्राण भूमण्डल पर आता है और बृक्ष- वनस्पतियों में संचारित होता है ।

तृतीय मंत्र में कहा है कि अन्तरिक्ष स्थान का प्राण बृष्टि द्वारा औषधि वनस्पतियों में आकर उनका विस्तार करता है, प्राण की यह शक्ति प्रत्यक्ष देखने योग्य है ।

बृष्टि द्वारा प्राप्त होने वाले प्राण से नकेवल वनस्पतियाँ प्रफुल्लित होती हैं, अपितु अन्य जीव जन्तु और प्राणी भी हर्षित होते हैं, मनुष्य भी इसका अनुभव करता है ।

अन्तरिक्षस्थ प्राण के कार्य का महत्व चतुर्थ और पंचम मन्त्र में है । पहले मन्त्र में प्राण का सामान्य स्वरूप वर्णित है , उसको अन्तरिक्ष स्थानीय एक विभूति यहाँ बतलाया गया है, अब उसी की वैयक्तिक विभूति सप्तम और अष्टम मन्त्रों में बताई है ।

श्वास के साथ प्राण का अन्दर गमन होता है और उच्छ्वास के साथ बाहर आना होता है ।

प्राणायाम के पूरक और रेचक का बोध "आयत्" और" परायत्" इन दो शब्दों से होता है । स्थिर ।तिष्ठत्। रहने वाले प्राण से कुंभक का बोध होता है और बाह्य कुंभक का ज्ञान "आसीन" पद से होता है ।

1, पूरक, 2- कुंभक, 3- रेचक और 4- बाह्य कुंभक ।

ये प्राणायाम के चार भाग हैं । ये चारों मिलकर परिपूर्ण प्राणायाम होते हैं । इनका वर्णन सातवें मन्त्र में "आयत्" तिष्ठत्, परायत् और आसीन इन चारों शब्दों से हुआ है । जो अन्दर आने वाला प्राण होता है, उसको, "आयत्" प्राण कहा जाता है, यह पूरक प्राणायाम है । आने जाने की गति का निरोध करके प्राण को अन्दर स्थिर किया जाता है, उसको "तिष्ठत्"

प्राण कहते हैं । यही कुम्भक अथवा अन्तः कुम्भक प्राणायाम होता है । जो अन्दर से बाहर जाता है उसको "परायत् प्राण" कहते हैं यही रेचक प्राणायाम है । सब प्राण रेचक द्वारा बाहर निकालने के पश्चात् उसको बाहर ही बैठाना "आसीन" प्राण द्वारा होता है, यही बाह्य कुम्भक है । प्राणायाम के ये चार भाग हैं । इन चारों के अभ्यास से प्राण वश में होता है, यही प्राणोपासना की विधि है ।

प्राण नाम उसका है जो नासिका द्वारा वक्षस्थल में पहुँचता है । अपान उसका नाम है कि जो नाभि के निम्न देश से गुदा के द्वार तक कार्य करता है । इन्हीं के अन्य जो नाम "प्राचीन" और प्रतीचीन" प्राण हैं । प्राण के स्वाधीन रखने का तात्पर्य प्राण और अपान को स्वाधीन करना । अपान की स्वाधीनता से मल-मूत्रोत्सर्ग उत्तम प्रकार से होते हैं और प्राण की स्वाधीनता से रुधिर की शुद्धि होती है । इस प्रकार दोनों के वशीभूति होने से शरीर की नीरोगता सिद्ध होती है । इस प्रकार की प्राण की स्वाधीनता होने से प्राण के अधीन सब शरीर है । इसका अनुभव होता है । इसी उद्देश्य से आठवें मन्त्र में कहा गया है " स्वस्मै त इदं नमः " अर्थात सब कुछ है, इसलिए तेरा सत्कार करता हूँ ।

शरीर का कोई भाग प्राण शक्ति के बिना कार्य नहीं कर सकता है, इसलिए सब अवयवों में सब प्रकार का कार्य करने वाले प्राण का सदा ही सत्कार करना चाहिए, । हर एक मनुष्य को उचित है कि वह अपने प्राण की इस शक्ति का ध्यान करे, विश्वास पूर्वक इस शक्ति का स्मरण रखे, क्योंकि निज आरोग्य की सिद्धि में ही अन्य औषध कार्य कर सकते हैं, परन्तु इस शक्ति के कमजोर होने पर कोई औषधि कार्य नहीं कर सकती है ।

प्राण ही सब औषधियों की औषधि है, इस विषय में नवम मन्त्र देखने योग्य है ।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और आनन्दमय, ये पाँच कोश हैं, इनको पाँच शरीर भी कह सकते हैं । इन पाँच शरीरों में से "प्राणमय"

शरीर का वर्णन मंत्र में किया गया । "प्रिया-तनू" यह प्राणमय कोश ही है । सब ही इस पर प्रेम करते हैं, सब चाहते हैं कि प्राणमय शरीर सदा रहे । प्राण और अपान ये इस शरीर के दो प्रेममय कार्य हैं । प्राण से शक्ति का संवर्धन होता है और अपान से विष को दूर करके स्वास्थ्य का संरक्षण होता है । प्राण के अन्दर एक प्रकार का "भेषज" अर्थात औषध है, दोषों को दूर करने की शक्ति का नाम (दोष-ध) औषध अथवा भेषज होती है । शरीर के सब दोष दूर करना और वहाँ आरोग्य की स्थापना करना, यह पवित्र कार्य प्राण का ही धर्म है । प्राण का दूसरा नाम "रुद्र" है और रुद्र शब्द का अर्थ "वेध" भी होता है ।

इस प्राण से औषध है, यह वेद का कथन है । इस पर अवश्य विश्वास रखना चाहिए । क्योंकि यह विश्वास अवास्तविक नहीं है, अपनी निज शक्ति पर विश्वास रखने के समान ही यह वास्तविक विश्वास है ।

दशम मन्त्र में कहा है कि जिस प्रकार पुत्र का संरक्षण करने की इच्छा पिता करता है, उसी प्रकार प्राण सबका रक्षण करता है । सब प्रजाओं के शरीर में नस-नाड़ियों में जाकर वहाँ रहकर सब प्रजा का संरक्षण यह प्राण करता है न केवल प्राण धारण करने वाले प्राणियों का, अपितु, जो प्राण धारण नहीं करते हैं, ऐसे स्थावर पदार्थों का भी रक्षण प्राण ही करता है, अर्थात कोई यह न समझे कि स्वासोच्छवास करने वाले प्राणियों में प्राण है, अपितु वृक्ष, वनस्पति, पत्थर आदि पदार्थों में भी प्राण है और इन सब पदार्थों में भी प्राण है और इन सब पदार्थों में रहकर प्राण सबका संरक्षण करता है । प्राण को पिता के समान पूज्य समझना चाहिए और उसको सब पदार्थों में व्यापक समझना चाहिए ।

शरीर में से "प्राण" को चले जाने पर मृत्यु होती है और जब तक शरीर में प्राण कार्य करता है, तब तक ही शरीर में सामर्थ्य रहती है । यह ग्यारहवें मंत्र का कथन है, इस प्रकार एक ही प्राण जीवन और मृत्यु का कर्ता होता है । "देव" शब्द से इस मन्त्र में इन्द्रियों का ग्रहण होता है । सब इन्द्रियों प्राण की

ही उपासना करती हैं, अर्थात् प्राण के साथ रहकर अपने अन्दर बल प्राप्त करती है । जो इन्द्रियाँ प्राण के साथ रहकर बल प्रदान करती हैं वे ही कार्यक्षम होती हैं, और जो इन्द्रियां प्राण से विच्युत होती हैं, वे मर जाती हैं । यही प्राण उपासना और यही रुद्र उपासना है, इसका यहाँ अनुभव हो सकता है । प्राण ही महादेव, रुद्र, शम्भु आदि नामों से बोधित होता है । व्यक्ति के शरीर में प्राण ही उसकी विभूति है । सब जगत् में विश्व व्यापक प्राण शक्ति ही कार्य कर रही है । इस व्यापक प्राण शक्ति के आश्रय से अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य आदि देवतागण कार्यरत रहते हैं । दोनों स्थानों में दोनो प्रकार के देव प्राण की उपासना से ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं । तीसरे देव समाज में और राष्ट्र में विद्वान, शूर आदि हैं । ये सत्यवादी, सत्यनिष्ठ, सत्य-परायण और सत्याग्रही बनकर प्राणायाम द्वारा प्राणोपसना करते हैं । प्राण ही इनको उत्तम लोक में पहुँचाता है । कुछ लोग पूछ सकते हैं कि सत्यवादिता का प्राण उपासना से क्या संबंध है : तो इसका उत्तर है कि सत्यवादिता का प्राण उपासना से उसकी शक्ति बढ़ती है । प्राण की शक्ति के साथ मानसिक शक्ति का विकास होने से बड़ा लाभ होता है । प्राणायाम से प्राण की शक्ति बढ़ती है और सत्यनिष्ठ से मन की शक्तियाँ विकसित होती है । इस प्रकार दोनों शक्तियों का विकास होने से मनुष्य की योग्यता असाधारण हो जाती है ।

द्वादश मन्त्र में कहा गया है कि प्राण विशेष तेजस्वी है । जब तक शरीर में प्राण रहता है, तब तक ही शरीर में तेज रहता है । प्राण के चले जाने पर शरीर का तेज नष्ट हो जाता है । सब शरीर में प्राण से ही प्रेरणा होती है। बोलना, चलना आदि सब प्राण की प्रेरणा से ही होती है । अर्थात् शरीर में तेज और प्रेरणा प्राण से ही प्राप्त होती है । इसीलिए समस्त प्राणिमात्र प्राण की ही उपासना करते हैं । इस जगत् में सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्राण ही हैं। सूर्य किरणों के द्वारा वायु में प्राण रखा जाता है और चन्द्र अपनी किरणों से

औषधियों को प्राण देता है । मेघ, विद्युत् आदि सब अपने अपने कार्य द्वारा जगत् को प्राण देते हैं । अन्त में प्राणों का प्राण जो प्रजापति परमात्मा है, वही सच्चा प्राण है, क्योंकि जीवन की सब प्राण शक्ति का वह एक मात्र आधार है। यही कारण है कि वेद में प्रजापति परमात्मा का नाम प्राण ही है । अन्य पदार्थों में भी प्राण है, उसका वर्णन तेरहवें मन्त्र में इस प्रकार है - मृत्यु प्राण एक ही है, उसके बल से शरीर में प्राण और अपान कार्य करते हैं । इसी प्रकार खेती में बैल की शक्ति मुख्य है । उसकी शक्ति से ही चावल और जौ आदि धान्य उत्पन्न होता है । वेद में, "अनड्वान" यह बैलवाचक शब्द प्राण का ही वाचक है, अर्थात् शरीर रूपी खेत में यह प्राण रूपी बैल ही खेती करता है, और यहाँ का किसान जीवात्मा है । शरीर क्षेत्र है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, प्राण बैल है और जीवन व्यवहार रूप से खेती यहाँ चल रही है ।

गर्भ के अन्दर रहने वाला जीव भी गर्भ में प्राण और अपान के व्यापार करता है और इसीलिए वहाँ उसका जीवन होता है । जन्म के अनुकूल प्रेरणा करना प्राण के ही आधीन होता है, इस चतुर्दश मन्त्र में " स पुनः जायते" यह वाक्य पुर्नजन्म की कल्पना का मूल वेद में हैं, ऐसा कह रहा है, जीवात्मा पुनः पुनः जन्म धारण करता है, यह सब प्राण की ही प्रेरणा से होता है । यह भाव इस मन्त्र से स्पष्ट है ।

पन्द्रहवें मन्त्र में प्राण को "मातरिश्वा" कहा है । माता के अन्दर प्राण रूप अवस्था में जीव रहता है इसलिए जीव का नाम "मातरिश्वा" है ।

औषधियों का उपयोग तब तक होता है जब तक प्राण की शक्ति शरीर में है । जब प्राणशक्ति शरीर से अलग होने लगती है, तब किसी औषधि का कोई उपयोग नहीं होता है । इस सूक्त के मन्त्र नौ में प्राण ही औषधि है जो जीवन का हेतु है, ऐसा कहा गया है, उसका अनुसंधान इस सोलहवें मन्त्र के साथ उचित करना चाहिए है।

इस मंत्र में आथर्वणी आंगिरसी, दैवी और मनुष्यजा ये चार नाम चार प्रकार की चिकित्साओं के बोधक हैं । इसका विचार इस प्रकार करेंगे-

"मनुष्यजः औषधाय- अर्थात मनुष्यों की बनाई औषधियां, जैसे- कषाय चूर्ण अवलेह, भस्म, कल्प आदि जो वैद्यों डाक्टरों द्वारा बनाये जाते हैं, उनका समावेश इसमें होता है । ये मानवीय औषधियों के प्रकार हैं । इससे श्रेष्ठ दैवी विधि है - दैवी औषधयः आप, तेज, वायु आदि देवों के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह दैवी-चिकित्सा है । जल- चिकित्सा आदि और- चिकित्सा वायु-चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा आदि सब दैवी चिकित्सा के प्रकार हैं । सूर्य चन्द वायु आदि देवताओं के साक्षात संबंध से यह चिकित्सा होती है । इसके अतिरिक्त देवयज्ञ अर्थात् हवन आदि द्वारा जो चिकित्सा होती है उसका भी समावेश इसमें होता है ।

देवयज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके, उन देवताओं के जो-जो अंश अपने शरीर में हैं, उनका आरोग्य सम्पादन करना कोई अस्वाभाविक प्रकार नहीं है, यह बात युक्तियुक्त और तर्कगम्य भी है ।

आंगिरसी औषधयः अंगों, अवयवों और इन्द्रियों में एक प्रकार का रस रहता है, जिसके कारण प्राणियों के शरीर की स्थिति रहती है, उस रस के द्वारा जो चिकित्सा होती है, वह आंगिरसी चिकित्सा कहलाती है । मानसिक इच्छा शक्ति की प्रबल प्रेरणा से इस रस का अंग प्रत्यंगों में संचार करने से रोगों की निवृत्ति होती है ।

आथर्वणी औषधयः- अ- अथर्वा" नाम है योगी का । मन की विविध वृत्तियों का निरोध करने वाला, चित्त वृत्ति को स्वाधीन रखने वाला योगी अथर्वा कहलाता है । इस शब्द का अर्थ "अ -थर्वा" निश्चल, स्तब्ध स्थिर है । स्थिर प्रज्ञा, स्थिर बुद्धि आदि शब्द इसका भाव बतलाते हैं । योगी लोग मन्त्र

प्रयोग से जो चिकित्सा करते हैं, उसका नाम आथर्वणी चिकित्सा है । हृदय के प्रेम परमेश्वर भक्ति से, मानस-शक्ति से और आत्म विश्वास से मन्त्र सिद्धि होती है । यह आथर्वणी चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें जो कार्य होता है, वह आत्मा की शक्ति से होता है, इसलिए अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता है । ये सब चिकित्सा के प्रकार तब तक कार्य करते हैं, जब तक प्राण शरीर में रहना चाहता है । जब प्राण चला जाता है, तब कोई चिकित्सा फलदायक नहीं हो सकती है । इस प्रकार प्राण का महत्व विशेष है ।

बीसवें मन्त्र में कहा है कि सूर्य, चन्द्र, वायु देवताओं के अंश मनुष्यादि प्राणियों के शरीरमें रहते हैं । इन देवताओं में प्राण शक्ति व्याप्त है । यही व्यापक प्राण पूर्व देव को छोड़कर दूसरे देह में प्रविष्ट होता है । अर्थात् एक बार जन्म लेने के पश्चात् पुनः जन्म लेता है । आत्मा की शक्तियों का नाम शची है। इन्द्र की धर्मपत्नी का नाम शची था, धर्मपत्नी का भाव यहां निज शक्ति ही है । इन्द्र जीवात्मा का नाम है, और उसकी शक्तियां शची नाम से प्रसिद्ध है । पिता का अंश अपनी सब शक्तियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट होता है । पिता के अंशों अवयवों और इन्द्रियों के समान ही पुत्र में कई अंग, अवयव और इन्द्रिय होते हैं । स्वभाव तथा गुणधर्म भी कई अंशों में मिलते हैं । इस बात को देखने से पता लग सकता है कि पिता अपनी शक्तियों के साथ किस प्रकार पुत्र में प्रविष्ट होता है ।

इक्कीसवें मन्त्र में "हंस" नाम प्राण का है । श्वास के अन्दर जाने के समय "स" की ध्वनि होती है और उच्छ्वास से बाहर आने के समय "ह" की ध्वनि होती है । "ह" और "स" मिलकर "हंस" शब्द प्राणवाचक बनता है । उसी के अन्य रूप " अ- हंसः सो अहं" आदि उपासना के लिए बनाये गये हैं । इनमें "हंस" शब्द की मुख्य है । उल्टा शब्द बनाने से इसी का "सोअहं" बन जाता है । अथवा हंस के साथ "ओम्" मिलाने से "सो हं" बनता है ।

स - ह --ह-स
ओ-म् --म-अ ओ (अः)
सोऽहं, -- हंसः

वेद में हंस का वर्णन अनेक मन्त्रों में आया है । इसका मूल आशय इस प्रकार है- वेद में " असौ अहं (यजु- 40/17)" कहा है । "असु" अर्थात प्राण शक्ति के अन्दर रहने वाला मैं आत्मा हूं । यह भाव उक्त मन्त्र का है, वही भाव उक्त स्थान में है । प्राण के साथ आत्मा का अवस्थान है, यह प्राण ही हंस है । इस हृदय के मानसरोवर या मानस(सरोवर में क्रीड़ा करता है, श्वास लेने के समय यह प्राण उस सरोवर में गोता लगाता है और उच्छ्वास लेने के समय ऊपर उठता है । यहाँ प्रश्न उठता है कि जब उच्छ्वास के समय प्राण बाहर आता है, तब प्राणी मरता क्यों नहीं ? पूर्ण उच्छ्वास लेकर श्वास को पूर्ण बाहर निकालने पर भी मनुष्य मरता नहीं, इसका कारण इस मन्त्र में बताया है- जिस प्रकार हंसपक्षी एक पैर पानी में ही रखकर दूसरा पैर ऊपर उठाता है, उसी प्रकार प्राण ऊपर उठते समय अपना एक पैर हृदय के रक्ताशय में दृढ़ता से रखता है और दूसरे पैर को ही बाहर उठाता है, कभी दूसरे पैर को हिलाता नहीं । अर्थात् प्राण अपनी एक शक्ति को शरीर में स्थिर रखताहुआ दूसरी शक्ति से बाहर आकर कार्य करता है ।

इस शरीर में आठचक्र हैं, जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है, यह बात बाइसवें मन्त्र में कही गई है । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्त्रार से आठ चक्र हैं । क्रमशः गुदा से लेकर सिर के ऊपर भाग तक आठ स्थानों में ये आठ चक्र हैं । पीठ के मेरुदण्ड में इनकी स्थिति है । प्रत्येक चक्र में प्राण जाता है और अपने अपने नियत कार्य करता है ।

जो सज्जन प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, उनको अपना प्राण इस चक्र में पहुंचा है, इस बात का अनुभव होता है । ऊपर मस्तिष्क में सहस्त्रार चक्र का

स्थान है, यही मस्तिष्क का मध्य है और मुख्य भाग है । प्राण का एक केन्द्र हृदय में है । इस प्रकार एक केन्द्र के साथ आठ चक्रों में सहस्त्रारों के द्वारा आगे और पीछे चलने वाला यह प्राणचक्र है ।

इस सूक्त का अंतिम मन्त्र कहता है कि " हे प्राण ! मेरे से दूर न हो मैं दीर्घकाल तक मेरे अन्दर रहो, मैं दीर्घ जीवन व्यतीत करूँगा, मैं दीर्घ आयुष्य से युक्त होकर सौ वर्ष से भी अधिक जीवन व्यतीत करूँगा इसलिए मुझसे पृथक् न होओ ।

यह भावना उपासक को मन में धारण करनी चाहिए । अन्नमय मन है और अपोमय प्राण है, इसीलिए प्राण को पानी का गर्भ कहा गया है । उपासक के मन में यह भावना स्थिर रहनी चाहिए कि मैंने प्राणायामादि द्वारा अपने शरीर में प्राण को बाँधकर रख दिया है इसलिए प्राण कभी वियुक्त होकर दूर नहीं होगा। प्राणायामादि साधनों पर दृढ़ विश्वास रखकर, उन साधनों के द्वारा मेरे शरीर में प्राण स्थिर हुआ है ।ऐसा दृढ़ भाव रखना चाहिए और कभी अकाल मृत्यु का विचार तक मन में नहीं आना चाहिए ।आत्मा पर विश्वास रखने से भावना दृढ़ हो जाती है ।"[1]

1- अथर्ववेद संहिता-आचार्य श्रीराम शर्मा ।सायण भाष्य।

ऋग्वेद में प्राण-

वृत्रस्य त्वा श्वसथा ईषमाणा
विश्वेदेवा अजहुर्ये सखाया
मरुद्भिः इन्द्र सख्यं अस्त्वं थेमा विश्वाः पृतना जयाति
त्रिः षष्टिस्त्वो मरुतो वावृधाना उस्त्रा इव राशयो यज्ञियासः

अर्थ- हे इन्द्र । पाप की पुकार से तुम भयभीत हो और सब देवताओं ने जो तुम्हारे सखा थे, तुम्हारा साथ छोड़ दिया, अब तुम प्रणव के साथ अपनी मैत्री करो तब अपनी पूरी सेना को तुम पराजित करने में समर्थ हो जाओगे ।

या रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यति मति,
स्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ।।[2]

अर्थ- हे परस्पर दयायुक्त मन वाले, स्वर्णिम रथ में चढ़े हुए इन्द्र के अनुगामी रुद्रास प्राण आओ तुम इन्द्रवत हो, आत्मशक्ति से युक्त हो, सेवा-परायण हो, तुम्हारी गति हितकर और रमणीय है । तुम हमारे सुचित या कल्याण हेतु, उत्तम व्यवस्था के लिए यहाँ रहो । जैसे प्यासा चातक स्वातिनक्षत्र के देवीजल के लिए लालायित रहता है, वैसे ही हमारी गति तुम्हारे लिए उत्कण्ठित हो रही है ।

जब आत्मशक्ति से समवेत प्राण शरीर में संचार करते हैं, तो प्राणी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है । उसकी उमंग, उसका उत्साह, उसकी स्फूर्ति, उसकी कार्यतत्परता, उसकी तन्मयता और एकनिष्ठा

1-ऋग्वेद- मण्डल, सायण भाष्य , सूक्त-98, मंत्र 7
2- वही मण्डल 5, सूक्त 57, मंत्र ।

देखते ही बनती है; एक अदभुत तेज उसके मुखमण्डल को प्रदीप्त करता रहता है, मस्तक पर श्री और अंग अंग में प्राण की शोभा विराजमान हो जाती है। वह सक्रियता का मूर्तिमान् रूप धारण कर लेता है-

> गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं
> चन्द्रवत् राधो मरुतो ददा नः ।[1]
> प्रशस्ति नः कृणुत रुद्रियासो
> भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ।।[2]

अर्थ- हे मरुदगण तुम हमें गौ, अश्व, घोड़े, रथ, पुत्र, स्वर्ण तथा बहुत सा अन्न दो। हे रुद्रपुत्रों। तुम हमारी सम्पन्नता की वृद्धि करो। हे प्राण हम तुम्हारी दैवी रक्षा का सेवन करें।

> हये नरो मरुतो नस्तुवभिवासो अमृता ऋतज्ञाः ।
> सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ।।[3]

अर्थ- हे प्राणो मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं। मुझ पर दया करो, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे प्राण तुम अमृत हो, ऋत को जानने वाले हो यह सत्य ही सुना है कि तुम कवि हो, अर्थात् तरुण ज्ञानी बहुत सी वाणी वाले हो और बल वाले हो।

1- ऋग्वेद-मण्डल 5, सूक्त 57, मंत्र 7

2- वही मण्डल 5

प्राण शक्ति और शरीर-

जो प्राण संसार में व्याप्त है, उसका जो अंश इस शरीर और मन में कार्यशील है, वही अंश हमारे सबसे निकट है । यह जो क्षुद्र प्राण-तरंग है- जो हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के रूप में परिचित है, वह अनन्त प्राण समुद्र में हमारे सबसे निकटतम तरंग हैं, यदि हम उन क्षुद्र तरंग पर विजय प्राप्त कर लें, तभी हम समस्त प्राण-समुद्र को जीतने की आशा कर सकते हैं । जो योगी इस विषय पर कृतकार्य होते हैं, वे सिद्धि को पा लेते हैं, तब कोई भी शक्ति उनपर प्रभुत्व नहीं जमा कर सकती । वे एक प्रकार से सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो जाते हैं। हम सभी देशों में ऐसे सम्प्रदाय देखते हैं जो किसी न किसी उपाय से इस प्राण पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं । अमेरिका में हम मनः शक्ति से आरोग्य करने वाले । Mind healers । विश्वास से आरोग्य करने वाले (Faith-healers) । प्रेतात्मवादी । Spiritualists । ईसाई वैज्ञानिक Christian Scientists सम्मोहन विद्यावित् (Hypnotists) आदि अनेक सम्प्रदाय देखते हैं । यदि हम इन मतों का विशेष रूप से विश्लेषण करें, तो देखेंगे कि इन सब मतों की पृष्ठभूमि में प्राणायाम ही है । इन सब मतों के मूल में एक ही बात है । वे सब एक ही शक्ति को लेकर कार्य कर रहे हैं और वह प्राण की ही शक्ति है ।

यह प्राण ही समस्त प्राणियों के भीतर जीवनी-शक्ति के रूप में विद्यमान हैं । विचारणा इसकी सूक्ष्मतम और उच्चतम अभिव्यक्ति है, जिसे हम साधारणतः विचारणा की आख्या देते हैं, वे ही प्राण की एक मात्र वृत्ति नहीं हैं । इसके अतिरिक्त हमारा निम्नतम कार्यक्षेत्र भी है जिसे हम जन्मजात प्रवृत्ति अथवा ज्ञानरहित चित्तवृत्त अथवा मन की अचेतन भूमि कहते हैं । शरीर के समस्त स्वाभाविक कार्य इसी विचारणा के स्तर के अन्तर्गत हैं ।[1]

1= विवेकानन्द साहित्य-प्रथम खण्ड, तृतीय अध्याय

शरीर की सारी सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियाँ, जो प्राण की विभिन्न अभिव्यक्ति मात्र हैं, यदि सभी रास्तों में परिचालित हो, तो वे मन पर विशेष रूप से कार्य करती हैं और तबमन भी पहले से उच्चतम अवस्था में अर्थात् अतिचेतन भूमि में चला जाता है और वहाँ से कार्य करता है ।

मनुष्य शरीर में इस प्राण की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति है- फेफड़े की गति यदि वह गति रुक जाये तो सारी क्रियायें तुरन्त बन्द हो जायंगी । शरीर के भीतर जो अन्यान्य शक्तियाँ कार्य करती हैं, वे भी शान्त भाव धारण कर लेती हैं, पर ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो अपने को इस प्रकार अभ्यस्त या शिक्षित कर लेते हैं कि उनके फेफड़े की गति रुक जाने पर भी उनका शरीर नहीं जाता । सूक्ष्मतर शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमें स्थूलतर शक्ति की सहायता लेनी पड़ती है । इस प्रकार क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर शक्ति में जाते हुए अन्त में हम चरम लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं । प्राणायाम का यथार्थ अर्थ है- फेफड़े की इस गति को रोकना । इस गति के साथ श्वास का निकट संबंध है । यह गति श्वास प्रश्वास द्वारा उत्पन्न कर रही है । यह गति ही पम्प की भाँति वायु को भीतर को खींचती है । प्राण इस फेफड़े को चलाता है और फेफड़े की गति फिर वायु को खींचती है । अतः इससे यह स्पष्ट है कि प्राणायाम श्वास प्रश्वास की क्रिया नहीं है । पेशियों की जो शक्ति फेफड़ों को चलाती है, उसको वश में लाना ही प्राणायाम है । जो शक्ति स्नायुओं के भीतर से पेशियों के पास जाती है, और जो फेफड़ों का संचालन करती है, वही प्राण है । प्राणायाम की साधना में हमें उसी को वश में लाना है । जब प्राण पर विजय प्राप्त हो जायगी, तब हम तुरन्त देखेंगे कि शरीरस्थ प्राण की अन्यान्य सभी क्रियायें हमारे अधिकार में धीरे धीरे आ गई हैं। प्राणायाम के दृढ अभ्यास से शरीर की कुछ गतियों, जो हमारे अधीन नहीं होती फिर से पूरी तरह वश में लाई जा सकती हैं, इस तरह शरीर के प्रत्येक अंश को अधीन करना पूर्णरूपेण संभव है । योगी प्राणायाम द्वारा इसमें कृत कार्य होते हैं ।

प्राणायाम में श्वास लेते समय सम्पूर्ण शरीर को प्राण से पूर्ण करना होता है। अंग्रेजी अनुवाद में प्राण शब्द का अर्थ श्वास किया गया है। इसमें सहज ही सन्देह हो सकता है कि श्वास से सम्पूर्ण शरीर को कैसे पूरा किया जाये, वास्तव में यह अनुवादक का दोष है। देह के सारे अंगों को प्राण अर्थात् इस जीवनी-शक्ति द्वारा भरा जा सकता है और जब हम इसमें सफल न होंगे तो सम्पूर्ण शरीर हमारे वश में हो जायेगा, शरीर की समस्त व्याधियां सारे दुःख हमारी इच्छा के अधीन हो जायेंगे।

जगत् को हिला देने वाली तीव्र इच्छा शक्ति सम्पन्न महापुरुष अपने प्राण को कम्पन की एक उच्च स्थिति में ला सकते हैं और यह प्राण इतना महान् तथा शक्तिशाली होता है कि वह दूसरे को पल भर में लपेट लेता है, हजार मनुष्य उनकी ओर खिंच जाते हैं और संसार के आधे लोग उनके भाव से परिचालित हो जाते हैं। जगत् के सभी महान् पैगम्बरों का प्राण पर अत्यन्त अद्भुत संयम था जिसके बल से वे इच्छा शक्ति सम्पन्न हो गये थे। वे अपने प्राण के भीतर अति उच्च कम्पन पैदा कर सकते थे। संसार में शक्ति के जितने विकास देखे जाते हैं, सभी प्राण के संयम से उत्पन्न होते हैं। मनुष्यको यह तथ्य भले ही मालूम न हो पर किसी तरह इसकी व्याख्या नहीं हो सकती।

शरीर में यह प्राण संचालन कभी एक ओर अधिक और दूसरी ओर कम हो जाता है। इससे संतुलन भंग हो जाता है और जब प्राण का यह सन्तुलन नष्ट हो जाता है, तब रोग की उत्पत्ति होती है। अतिरिक्त प्राण को हटाकर जहाँ प्राण का अभाव है, वहाँ का अभाव भर सकने से ही रोग अच्छा हो जाता है। प्राण कहाँ अधिक है और कहाँ अल्प, इसका ज्ञान प्राप्त करना भी प्राणायाम का अंग है।

प्राणशक्ति और ब्रह्माण्ड-

अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म की शक्ति माया की आवरण और विक्षेप शक्ति के द्वारा संसृष्ट यह समस्त प्रपंच अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है। परब्रह्म की शक्ति माया इस सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् की रचना करती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी की शक्ति से अनुप्राणित है। उसी की शक्ति से प्रेरित होकर विभिन्न शक्तियाँ अपने अपने उपादान एवं निमित्त कारणों से संबंधित पदार्थों की रचना करती हैं। ब्रह्म की वह शक्ति ही कण- कण में व्याप्त है जैसा कि ऋग्वेद में निरूपित हुआ है कि ब्रह्म की वह पराशक्ति मित्र, वरुण, इन्द्र आदि देवताओं को धारण करता है। वही अनुष्ठाता उपासक को धनधान्य प्रदान करती है। अतएव देवताओं में वह प्रधान, वही अनेक रूपों में और अनेक भावों में विराजमान है। सम्पूर्ण प्राणियों में उसी का प्रवेश है। अतएव वह प्राण स्वरूपा है। प्राणियों के समस्त कार्य प्रपंच उसी के लिए है। संसार में जहाँ कोई भी कार्य करता है, वह सब कुछ उसी शक्ति से संभव है, उसी शक्ति से समस्त जगत् सम्प्राणित है, जो उस शक्ति से हीन हो जाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। ऋग्वेद के अनुसार-

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषा प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मां देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥[1]

वही शक्ति ब्रह्मद्वेषी सिंहक, असुरों के बल के लिए रुद्र के धनुष को चढ़ाती है। शरणागत जनों की रक्षा के लिए शत्रुओं से युद्ध करती है और अन्तर्यामी रूप में पृथ्वी तथा आकाश के अन्दर व्याप्त रहती है। इस शक्ति का उस परब्रह्म के साथ तादात्म्य है। अतएव उसे तादात्म्य के द्वारा उसकी यह प्रतिनिधि सिद्ध होती है कि वह जगत् के पितृ रूप में स्थित आकाश को सर्वाधिष्ठान स्वरूप

1- ऋग्वेद- दशम अध्याय, 10 सूक्त, 125

परमात्मा के ऊपर उत्पन्न करती है । समस्त भूतों के उत्पत्ति स्थान परमात्मा में और बुद्धि की व्यापक वृत्तियों में उसके कार्यस्वरूप ब्रह्म की स्थिति है अतएव वह सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त है और उस दिव्यलोक को अपने शरीर से स्पर्श करती है-

अहंसुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूद्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण ने इसी प्रकार का संकेत किया है । उनका कथन है कि उनकी महत् ब्रह्म रूपी प्रकृति ।त्रिगुणमयी माया। समस्त भूतों की योनि। है और वे इस योनि में चेतन रूप बीज की स्थापना करते हैं । उस जड़ चेतन के संयोग से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है । अनेक प्रकार की योनियोंमें जितने शरीर उत्पन्न होते हैं उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भधारण करने वाली माता है और मैं बीज की स्थापना करने वाला पिता हूँ-

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजं प्रदः पिताः ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार की समस्त शक्तियों की मूल कारण ब्रह्म की अव्यक्त माया शक्ति है और उसमें प्राणशक्ति का आधान करने वाला ब्रह्म है ।

1-ऋग्वेद. मण्डल 10, अध्याय 10. सूक्त - 125
2- श्रीमद्भगवद्गीता-चतुर्थ अध्याय, श्लोक 3 व 4

संस्कृत वैदिक वाङ्मय में इस तथ्य का बहुधा अन्वाख्यान हुआ है। भारतीय तत्वेत्ता मनीषियों में इसका प्रायः साक्षात्कार किया है। प्राण प्राणिमात्र की संचालिका अव्यक्त शक्ति है जो कि चराचरात्मक जगत् में अभिव्याप्त है। उस शक्ति को भी अधिष्ठाता ब्रह्म है जिससे प्रेरित होकर वह जगत् के संचालन रूपी कार्यों में प्रवृत्त होता है। समस्त ब्रह्माण्ड में उसी की दिव्य दीप्ति है। समस्त चराचरात्मक जगत् उसी से अनुप्राणित है और अनुस्यूत है। इस अखिल ब्रह्माण्ड में चौदह भुवन हैं जो इसप्रकार है – भुः, भुवः, स्वः महः, जनः तपः, सत्यम् अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल।

इन समस्त भुवनों में उस प्राणशक्ति की ही महिमा है। यह समस्त जगत् उसी प्राणशक्ति के सौन्दर्य द्वारा अनुप्राणित होकर सुशोभित हो रहा है। प्राणशक्ति के अभाव में इनकी स्थिति उसी प्रकारकी हो जाती, जिस प्रकार प्राणों के बिना शरीर। जिसप्रकार प्राणवान् शरीर विभिन्न क्रियाओं एवं व्यापारों में प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार उक्त सभी लोक विभूषित हो रहे हैं।

ब्रह्म की माया शक्ति से इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। दार्शनिकों का मत है कि तमोगुण प्रधान अ विक्षेप शक्ति के द्वारा मायोपहित चेतन के द्वारा आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की उद्भावना हुई। यह आकाश ही सूक्ष्मभूत और तन्मात्र है। इनमें सत्व रजस् और तमस् ये तीनों गुण प्रत्येक में रहते हैं। इनमें आकाश के सात्विक, अंश से श्रोत्र, वायु के सात्विक अंश से त्वक्, अग्नि के सात्विक अंश से चक्षु, जल के सात्विक अंश से रसना, और पृथ्वी से सात्विक अंश से घ्राण ये पाँच इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। आकाशादि पन्चभूतों के समष्टि सात्विक अंश से बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार मानक अन्तःकरण की वृत्तियाँ आविर्भूत हुई। इनमें बुद्धि की निश्चयात्मिका वृत्ति मन की संकल्पविकल्पात्मिका वृत्ति चित्त की अनुसंधानत्मिका वृत्ति और अहंकार की अभिमानात्मिका वृत्ति होती है। ये वृत्तियाँ प्रकाशात्मक हैं। वेदान्तसार के अनुसार बुद्धि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर विज्ञानमय कोश कहलाती है और विमर्शात्मा मन ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर "मनोमय कोश" कहलाता है।[1]

1-भारतीय दर्शन-डा० पारसनाथ द्विवेदी, पृ० 263

आकाशादि भूतों के रजस् अंश से अलग अलग व्यष्टिरूप में क्रमशः पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । उन्हीं आकाशादि पन्चभूतों के रजस् अंश से समष्टि रूप में क्रमशः प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान ये पाँच वायु उत्पन्न होते हैं । इन पाँच कर्मेन्द्रियों के साथ मिलकर पंचवायु "प्राणमय कोश" कहलाता है । विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय ये तीनों कोश मिलकर सूक्ष्मशरीर कहलाते हैं । इस सूक्ष्म शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, एक बुद्धि और एक मन में सत्रह अवयव रहते हैं और इसी शरीर में ज्ञान, क्रिया और इच्छा ये तीनों क्रियायों विद्यमान रहती हैं । सूक्ष्म शरीर की इस समष्टि से आवृत्त चेतन्य "सूत्रात्मा" या हिरण्यगर्भ और इसी शरीर की व्यष्टि से आवृत्त चैतन्य "तेजस" कहलाता है । सूक्ष्म शरीर की यह अवस्था स्वप्नावस्था होती है ।

पन्चीकृत महाभूतों से चौदह लोक समस्त ब्रह्माण्ड चार प्रकार के स्थूल शरीर उनमें भोग योग्य पदार्थ उत्पन्न हुए हैं । इसमें प्राणशक्ति से युक्त जीव जागरणावस्था को प्राप्त करता है और इसी स्थिति में वह विषयों का भोग प्राप्त करता है ।

वेदान्तदर्शन के अनुसार प्राणसृष्टि सूक्ष्मसृष्टि और स्थूलसृष्टि की समष्टि को महाप्रपंच कहते हैं और यह समस्त प्रपंच ब्रह्म ही है और इस सम्पूर्ण महाप्रपंच का संचालक प्राण है जो कि सभी में व्याप्त ब्रह्म की अव्यक्त शक्ति है ।